



2026:AHC-LKO:21350

उच्च न्यायालय, न्यायिक खंडपीठ इलाहाबाद, लखनऊ

आपराधिक अपील संख्या - 1393 वर्ष 2006

मंजीत एवं 3 अन्य

.....

अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य,

.....

प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता	:	पी.के. मिश्रा
प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता	:	शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या - 12माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

1. श्री पी.के. मिश्रा, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य/प्रतिपक्ष की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।
2. यह तात्कालिक आपराधिक अपील दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अंतर्गत, दिनांक 12.07.2006 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध, जो कि अपर सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी.-III, फैजाबाद द्वारा सत्र वाद संख्या 184/2005, राज्य बनाम मंजीत एवं अन्य, जो कि वाद अपराध संख्या 36/2005, धाराएं 304, 452, 323, 504, 506 भा.दं.सं., थाना तरुण, जनपद फैजाबाद से उत्पन्न हुआ, में पारित

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

किया गया, दायर की गई है; जिसके अंतर्गत अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध करते हुए निम्न प्रकार से दंडित किया गया—

(i) धारा 304(2)/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत प्रत्येक को 6 वर्ष का कठोर कारावास तथा ₹4,000/- का जुर्माना;

(ii) धारा 323/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत 6 माह का कारावास तथा ₹500/- का जुर्माना प्रत्येक;

(iii) धारा 452/34 भा.दं.सं. के अंतर्गत 1 वर्ष का कारावास तथा ₹1,000/- का जुर्माना प्रत्येक;

(iv) धारा 504 भा.दं.सं. के अंतर्गत 6 माह का कारावास तथा ₹500/- का जुर्माना प्रत्येक।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) के कथनों के अनुसार, घटना दिनांक 05.03.2005 को घटित होना बताई गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं तथा शिकायतकर्ता एवं उसके परिवारजनों के बीच विवाद/झगड़ा हुआ, जिसमें दोनों पक्षों को चोटें आईं। अपीलकर्ताओं की ओर से भी धारा 325 एवं 504 भा.दं.सं. के अंतर्गत एन.सी.आर. दर्ज कराई गई थी तथा न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात जांच की गई, जिसके उपरांत आरोप पत्र (चार्जशीट) दाखिल किया गया। यह भी एफ.आई.आर. में उल्लेखित है कि शिकायतकर्ता के पिता हितलाल का देहांत हो गया।

4. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया है कि अपीलकर्ताओं को पूर्व में किसी भी अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया गया है। प्रारंभ में ही उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि वे आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि आदेश को चुनौती नहीं दे रहे हैं, अपितु इस अपील में अपने तर्कों को केवल दण्डादेश के आदेश तक ही सीमित रख रहे हैं।

5. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए उपर्युक्त निवेदन के दृष्टिगत, अपील को उस सीमा तक निरस्त किया जाता है जहाँ तक वह आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि आदेश से संबंधित है। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिनांक 12.07.2006 को पारित निर्णय एवं दोषसिद्धि आदेश की पुष्टि की जाती है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

6. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया है कि उपर्युक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों, विशेषकर इस तथ्य के दृष्टिगत कि अपीलकर्ताओं को पूर्व में किसी भी अपराध में दोषसिद्ध नहीं किया गया है, विचारण न्यायालय को परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1958' कहा गया है) के प्रावधानों का अनुप्रयोग करना चाहिए था। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दण्डित करते समय न तो अधिनियम, 1958 के प्रावधानों को लागू किया और न ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के प्रावधानों पर विचार किया। आक्षेपित निर्णय में यह भी कहीं परिलक्षित नहीं होता कि धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता अथवा अधिनियम, 1958 के लाभ से वंचित रखने हेतु कोई विशेष कारण अभिलिखित किया गया हो।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 का अनुप्रयोग, लाभकारी प्रावधानों अर्थात् धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता या परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के साथ या बिना, किया जाना अपेक्षित है। यदि न्यायालय इन प्रावधानों में से किसी का भी अनुप्रयोग नहीं करता है, तो उसे ऐसे लाभकारी प्रावधानों को लागू न करने के विशेष कारण अभिलिखित करने होते हैं, बशर्ते कि अभियुक्त अन्यथा धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता या अधिनियम, 1958 की धारा 3 अथवा 4 के लाभ के लिए पात्र हो।

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से यह निवेदन किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को लाभकारी विधि, अर्थात् परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों का लाभ प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार है तथा न्यायालय पर यह दायित्व था कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अधीन, धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता अथवा अधिनियम, 1958 की धारा 3 या 4 की लागू योग्यता पर विचार करता। यदि धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता अथवा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों को लागू नहीं किया गया, तो न्यायालय को उसके कारण अभिलिखित करने चाहिए थे। अतः यह निवेदन किया गया है कि इस सीमा तक आक्षेपित निर्णय एवं आदेश गंभीर विधिक त्रुटि से ग्रस्त है, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, और इसलिए इसे बनाए नहीं रखा जा सकता।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

8. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता (ए.जी.ए.) ने इस आपराधिक अपील का यह कहते हुए विरोध किया है कि दोषसिद्धि का निर्णय एवं आदेश सुसंगत है तथा प्रासंगिक अभिलेखों एवं साक्ष्यों पर समुचित विचार के उपरांत पारित किया गया है। तथापि, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इस तथ्य के संबंध में कोई प्रतिकूल सामग्री अभिलेख पर नहीं है कि अपीलकर्ताओं का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है। यह भी निवेदन किया गया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 360/361 के प्रावधानों के आलोक में यह न्यायालय उपयुक्त लाभ प्रदान किए जाने पर विचार कर सकता है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के उपरांत, चूंकि वर्तमान में केवल सदाचरण पर परिवीक्षा के प्रश्न का ही निर्णय किया जाना है, अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएं 360 एवं 361 उन आदेशों से संबंधित हैं जिनके अंतर्गत अभियुक्त को सदाचरण पर परिवीक्षा अथवा चेतावनी देकर रिहा किया जा सकता है। इन प्रावधानों के अनुसार, जहाँ कोई व्यक्ति, जिसकी आयु 21 वर्ष से अधिक है, ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध होता है जो केवल जुर्माने से या अधिकतम सात वर्ष तक के कारावास से दंडनीय है, अथवा जहाँ कोई व्यक्ति, जिसकी आयु 21 वर्ष से कम है, ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध होता है जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, तथा उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं है, वहाँ दोषसिद्धि अभिलिखित करने वाला न्यायालय अभियुक्त की आयु, चरित्र अथवा पूर्ववृत्त तथा अपराध के घटित होने की परिस्थितियों सहित विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय को अभियुक्त को दंडित करने के स्थान पर उसे सदाचरण पर परिवीक्षा पर रिहा करना चाहिए तथा उससे यह निर्देशित करना चाहिए कि वह एक बंधपत्र निष्पादित करे, चाहे जमानतदारों सहित या बिना, ताकि वह निर्धारित अवधि के दौरान न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो तथा शांति एवं सद्व्यवहार बनाए रखे। उक्त शक्तियों के प्रयोग का प्रावधान अपीलीय न्यायालय, उच्च न्यायालय अथवा सत्र न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

10. उक्त संहिता की धारा 361 यह प्रावधान करती है कि कुछ परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा विशेष कारणों का अभिलेखन किया जाना आवश्यक है। अर्थात्, यदि कोई अभियुक्त धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता के लाभ, या परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के अंतर्गत, या बाल अधिनियम, 1960 के अधीन किशोर अपराधी के रूप में, अथवा उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अंतर्गत, जो किशोर अपराधियों के प्रशिक्षण या पुनर्वास से संबंधित हो, लाभ पाने का अधिकारी है, किन्तु उसे ऐसा लाभ प्रदान नहीं किया जाता है, तो न्यायालय अपने निर्णय में ऐसे लाभ से वंचित करने के विशेष कारण अभिलिखित करेगा।

11. इस विषय पर केंद्रीय विधि अर्थात् परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 एवं 4 विशेष रूप से यह प्रावधान करती हैं कि न्यायालय को कुछ अपराधियों को चेतावनी देकर रिहा करने की शक्ति तथा कुछ अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने की शक्ति प्रदान की गई है।

12. उत्तर प्रदेश राज्य में लागू राज्य विधि "उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938" है, जिसमें धारा 3 एवं धारा 4 क्रमशः न्यायालय को कुछ अपराधियों को समझाइश/भर्त्सना के उपरांत तथा सदाचार परिवीक्षा पर मुक्त किए जाने संबंधी शक्तियाँ प्रदान करती हैं।

13. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 360 एवं 361 की लागू योग्यता के प्रश्न पर इस न्यायालय की द्वैधपीठ द्वारा **उत्तर प्रदेश बनाम मिस्री लाल एवं अन्य**, 1982 सीआर.एल.जे. 1420 में विचार किया गया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है—

“26. ...उत्तर प्रदेश में धारा 360 के अनुप्रयोग को वर्ष 1975 के एक अध्यादेश द्वारा समाप्त कर दिया गया था। उक्त अध्यादेश को निरस्त कर उसके स्थान पर दण्ड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, संख्या 16, वर्ष 1976 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इस अधिनियम को 30-04-1975 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई तथा इसे उत्तर प्रदेश के असाधारण राजपत्र दिनांक 01-05-1976 में प्रकाशित किया गया। इस

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

अधिनियम की धारा 12 द्वारा उक्त अध्यादेश को निरस्त किया गया तथा यह उपबंध किया गया कि ऐसे निरसन के बावजूद, अध्यादेश के अंतर्गत किया गया कोई भी कार्य या की गई कोई भी कार्यवाही ऐसे मानी जाएगी मानो वह इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत की गई हो, जैसे कि यह अधिनियम 28 नवम्बर, 1975 से प्रभावी हो गया हो। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने वाद का निर्णय 02-02-1976 को किया। संशोधन अधिनियम संख्या 16, वर्ष 1976 की धारा 10 द्वारा संहिता की धारा 484 में संशोधन करते हुए उपधारा (d) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा (e) जोड़ी गई—

“(e) ...यूनाइटेड प्रोविंसेज़ प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 ... उत्तर प्रदेश राज्य में प्रभावी बना रहेगा और तदनुसार इस संहिता की धारा 360 के प्रावधान उस राज्य पर लागू नहीं होंगे, तथा धारा 361 के प्रावधान इस प्रकार लागू होंगे कि उसमें उल्लिखित केंद्रीय अधिनियमों के संदर्भों के स्थान पर उस राज्य में प्रवृत्त समतुल्य अधिनियम के संदर्भ माने जाएंगे।”

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 यह उपबंधित करती है कि यदि किसी मामले में न्यायालय किसी अभियुक्त के साथ धारा 360 के अंतर्गत, या परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों के अंतर्गत, या बाल अधिनियम, 1960 के अधीन किशोर अपराधी के रूप में, अथवा उस समय प्रभावी किसी अन्य विधि के अंतर्गत—जो किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास से संबंधित हो—कार्यवाही कर सकता था, किन्तु ऐसा नहीं किया गया, तो न्यायालय अपने निर्णय में ऐसा न करने के विशेष कारणों को अभिलिखित करेगा। उपर्युक्त प्रावधान को धारा 484 के खंड (e) के साथ पढ़ने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 के प्रावधानों का लाभ नहीं दिया जाता है, तो

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे लाभ न प्रदान

किए जाने के विशेष कारण अपने निर्णय में अभिलिखित करे।

14. अतः जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 लागू है, वहाँ उसी के प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा, न कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 का। इस प्रकार, किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में परिवीक्षा अधिनियम के प्रवर्तन से उस क्षेत्र में धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता अपवर्जित हो जाती है। तथापि, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अनुसार यह न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है कि वह इस पर विचार करे कि परिवीक्षा अधिनियम का लाभ क्यों न प्रदान किया जाए, और यदि ऐसा लाभ नहीं दिया जाता है, तो उसके लिए विशेष कारण अभिलिखित करे।

15. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ प्रदान किए जाने की उपयुक्तता के प्रश्न पर आते हुए, *सीताराम पासवान एवं अन्य बनाम बिहार राज्य*, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रतिपादित किया—

“उक्त विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग हेतु न्यायालय को प्रकरण की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र पर विचार करना आवश्यक है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की गंभीरता तथा उससे पीड़ित पर पड़े प्रभाव का यथार्थ आकलन करना चाहिए। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ, उक्त प्रावधानों में निहित सीमाओं के अधीन है तथा ‘कर सकेगा’ शब्द से यह स्पष्ट है कि धारा 3 या 4 के अंतर्गत अपराधी को रिहा करना या न करना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है, जो अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र तथा प्रकरण की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाता है। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत यह शक्ति न्यायालय में तब निहित होती है जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्युदंड या आजीवन

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कारावास से दंडनीय नहीं है। यह शक्ति न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के समय प्रयोग की जा सकती है तथा यदि न्यायालय यह उचित समझे कि प्रकरण की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त को इसका लाभ दिया जाना चाहिए, तो यह शक्ति अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय भी प्रयोग की जा सकती है।”

16. *मो. हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 660 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया—

“20. ...रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444 में, माननीय न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से इस प्रकार अभिमत व्यक्त किया—”

“यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति के विकास में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा अधिक उसके सुधार की ओर होता है। सामान्य रूप से कहा जाए तो यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों तथा 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के बीच, तथा उन अपराधियों के बीच जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और जो अपेक्षाकृत कम गंभीर अपराधों के दोषी हैं, एक भेद करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार प्रदान किया गया है कि वह उन्हें क्षमा-प्रशिक्षण के पश्चात अथवा अच्छे आचरण की परीक्षा पर, अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, रिहा कर सकता है, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को यह निर्देश दिया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों—

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

जिसमें अपराध की प्रकृति तथा अपराधी का चरित्र सम्मिलित है—को देखते हुए उन्हें अधिनियम की धारा 3 एवं 4 के अंतर्गत निपटाना उचित नहीं है।”

17. उपर्युक्त प्रावधानों एवं निर्णयों को वर्तमान मामले में लागू करने पर यह स्पष्ट है कि कथित घटना वर्ष 2005 में घटित हुई थी, जिसमें अधिकतम छह वर्ष का कारावास एवं अर्थदंड निर्धारित किया गया था। घटना घटित हुए लगभग दो दशक व्यतीत हो चुके हैं तथा यह निर्विवाद है कि अभियुक्त/अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई पूर्व या पश्चात् आपराधिक इतिहास नहीं है। आरोप केवल दो पक्षों के बीच हुई एक कहासुनी/झगड़े से संबंधित है, जिसमें दोनों पक्षों को चोटें आई थीं। इस न्यायालय की सुविचारित राय में, उपर्युक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विशेषकर यह देखते हुए कि कोई जघन्य अपराध घटित नहीं हुआ है तथा लगभग दो दशक का समय व्यतीत हो चुका है और इस अवधि में अपीलार्थी मानसिक एवं विधिक रूप से पीड़ित रहे हैं, इस अवस्था में कारावास की सजा को क्रियान्वित करना अनुचित प्रतीत होता है।

18. जहाँ तक दोषसिद्धि के भाग का प्रश्न है, इस न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय में कोई विधिक त्रुटि, मनमानी अथवा कोई अन्य त्रुटिपूर्णता दृष्टिगत नहीं होती है। तथापि, उपर्युक्त की गई चर्चा एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की राय में अभियुक्त/अपीलार्थियों पर अधिरोपित दंड में संशोधन किया जाना आवश्यक एवं उचित है।

19. यह अपील निम्नलिखित संशोधनों के साथ **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है:-

19.1. अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को यथावत् (उपबंधित) बनाए रखा जाता है। तथापि, अभियुक्त-अपीलार्थियों को अधिरोपित दंड में यह संशोधन किया जाता है कि उन्हें उत्तर प्रदेश अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्रदान किया जाता है तथा उन्हें परिवीक्षा पर रिहा किया जाता है, इस शर्त पर कि प्रत्येक अपीलार्थी आज से एक वर्ष की अवधि तक शांति बनाए रखेगा एवं सदाचार का पालन करेगा तथा वह रु. 30,000/- (तीस हजार रुपये) की दो

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

जमानतें एवं व्यक्तिगत मुचलका संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा, साथ ही यह लिखित आश्वासन देगा कि वह उक्त एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति एवं सदाचरण बनाए रखेगा। यदि उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन किया जाता है, तो अपीलार्थियों को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अधिरोपित दंड भोगना होगा। उपर्युक्त मुचलके अपीलार्थियों द्वारा एक माह के भीतर जिला परीवीक्षा अधिकारी, फैजाबाद (वर्तमान अयोध्या) के समक्ष प्रस्तुत किए जाएंगे तथा इसकी सूचना संबंधित न्यायालय को भी दी जाएगी।

20. इस आदेश की प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय एवं जिला परीवीक्षा अधिकारी, फैजाबाद (वर्तमान अयोध्या) को आवश्यक अनुपालन हेतु तत्काल प्रेषित की जाए।

दिनांक: 25 मार्च 2026

लक्ष्मण

(न्यायमूर्ति मनीष माथुर)

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।